इच्छाएँ व सुख

क्या आपने कभी किसी पार्टी में बच्चों को गुब्बारों के साथ खेलते हुए देखा है। एक बच्चा अचानक एक बड़ा लाल गुब्बारा पकड़ता है और चिल्लाता है: "यह गुब्बारा मेरा है!" अनजाने में, सभी बच्चे अपने गुब्बारे छोड़ते हैं और इस लाल गुब्बारे के लिए लड़ने लगते हैं। आपने देखा होगा कि यदि कोई प्रसिद्ध व्यक्ति फैशन में अपने बालों का ढंग (स्टाइल) बदलता है, अलग अंदाज से या अलग दिखने वाले कपड़े पहनता है तो बहुत लोग उसके जैसे ही बाल बनवा लेते हैं, कपड़े खरीदने लगते है। साधारण, सरल भाषा में मनोवैज्ञानिक इस आचरण को "**नकल की इच्छा**" कहते हैं। अनुसरण के स्थान पर "मै **अमुक** को फॉलो कर रहा/रही हूँ" का प्रयोग आज इन अनुसरण करने वाले व्यक्तियों को खुशी के साथ-साथ आधुनिकता की अनुभूति भी देता है।

हमारी बहुत सारी इच्छाएँ भीतर से नहीं, अपितु बाहर से उभरती हैं। हमारी अधिकांश प्रबल इच्छाएँ दूसरे लोगों का अनुकरण करने की इच्छा के कारण ही उपजती हैं।

वास्तव में, पूरा विज्ञापन उद्योग इसी उधार की इच्छाओं को जागृत करने के सिद्धांत पर कार्य कर रहा है। मानव इच्छा कोई साधारण प्रक्रिया नहीं है कि किसी व्यक्ति के लिए यदि कोई वस्तु, साधन, लक्ष्य आदि पाना आवश्यक है तो उसके भीतर स्वत: उस वस्तु, साधन, लक्ष्य, आदि के लिए इच्छा उत्पन्न हो जावेगी। अपितु हम आधिकांशत: दूसरों की इच्छा के अनुसार इच्छा करते है। यदि हम जागरूक नहीं हैं, तो दूसरे हमें प्रभावित करते हैं कि हमें क्या चाहिए और आज विज्ञापनों के साथ-साथ फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म नकल की इच्छा उत्पन्न करने के उत्कृष्ट स्रोत हैं।

मन में निरंतर इच्छाएँ उपजती रहती है जिनकी पूर्ति हमें खुशी देती है और सुख अनुभव कराती है। यदि इच्छा पूरी नहीं होती तो दुख होता रहता है।

ये सुख-दुख मन की मान्यताऐं है। जो कुछ मन चाहता है, यदि वैसा हो जावे तो मन उसमे आनन्द अनुभव करता है और वह उसकी सुख की मान्यता है और इसके विपरीत यदि परिणाम उसके अनुकूल न हो तो उसे कष्ट होता है और यह मन की दुख की मान्यता है। हर व्यक्ति की मान्यताऐ उसके ज्ञानानुसार है। जैसे कुछ व्यक्ति कही मार्ग मे किसी का धन मिल जाने पर बहुत खुश होते है और उस धन को अपना धन समझने लगते है तो कुछ अन्य व्यक्ति उस धन के मिलने से विचलित हो जाते है और उसके स्वामी तक उस धन को पहुँचाना अपना कर्तव्य समझते है। जब तक वह धन अपने स्वामी को नही मिल जाता वे कष्ट मे ही रहते है और धन स्वामी को मिल जाने पर ही उन्हे आनन्द, संतोष मिलता है।

जीवन को हम जितना आसान समझते है, वह उससे कहीं अधिक जटिल हैं। हम इस अनुसरण की इच्छा की पूर्ति के साथ-साथ 'अन्य-लोगों' के साथ अनजाने में ही होड़ में लग जाते है। यदि हम केवल अपनी इच्छा की पूर्ति कर के खुश रहना चाहते तो यह आसान होता परन्तु हम तो अन्य लोगों की तुलना में अधिक खुश रहना चाहते हैं क्योंकि हम सोचते हैं कि अन्य-लोग हमसे अधिक खुश हैं। यह दूसरों की तुलना में अधिक खुश रहना सदैव कठिन होता है। फलतः हमें मूल रुप से इच्छा पूरी हो जाने पर भी उस खुशी, उस सुख की अनुभूति नहीं होती।

हमारे लिए इस विषय का ज्ञान होना कि हमारे लिए क्या आवश्यक है और क्या नहीं, नितांत अनिवार्य है। दुर्भाग्यवश यह इतना सरल नहीं जितना प्रतीत होता है। हमें दूसरों की इच्छाओं का अनुसरण कदाचित नहीं करना चाहिए क्योंकि हम यह बिल्कुल भी नहीं जानते कि 'अन्य-लोगों' को किस में खुशी मिलती है, उनकी खुशी के क्या कारण हैं। क्या वे वास्तव में खुश हैं या वे ऐसा होने का दिखावा कर रहे हैं। वे सब वस्तुएँ, साधन आदि जो अन्य-लोगों को खुश करते हैं, आवश्यक नही कि हमें भी खुश करें।

हमे कोई भी विश्वविद्यालय इसका ज्ञान नहीं दे सकता कि हमारे लिए क्या आवश्यक है और क्या नहीं। प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएँ भिन्न हैं व उन आवश्यकताओं में उनकी आपस में महत्तवताएँ भी भिन्न हैं, जिनका आंकलन तो प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही अपने लिए करना होगा। अपनी आवश्यकताओं को पहचानने के लिए, उनका सही आंकलन करने के लिए

Desires and Happiness

Have you ever seen children playing with balloons at a party. A child suddenly grabs a big red balloon and shouts: "This balloon is mine!" Unknowingly, all the children drop their balloons and start fighting for this red balloon. You must have noticed that if a famous personality changes his/her hair-style, dresses differently or looks different, then many people get their hair done in the same style, start dressing themselves in the same way. In simple language, psychologists call this behavior a "**desire to imitate**". Instead of using the word "imitation" the use of phrase "I am following **xyz** personality" today, give these followers a feeling of happiness as well as modernity.

Many of our desires arise not from within, but from outside. Strong desires often arise because of our desire to emulate other people.

In fact, the entire advertising industry is working on the principle of awakening this borrowed desire. Human desire is not a linear process which arises automatically within a person whenever it is needed, rather our desires rise mostly according to the wishes of others. If we are not aware, others will influence and define what we need. Today, advertisements as well as social media platforms such as Facebook, Twitter, Instagram, etc. are excellent channels to generate a desire to imitate.

Desires constantly arise in the mind. Fulfillment of a desire makes us feel happy, if not fulfilled, then the sorrow remains.

Joys and sorrows are beliefs of the mind. The mind feels happy if the things work out the way, the mind wants them to be. This, is mind's recognition of joy and happiness. On the contrary, if the result is not according to the working of the mind then it hurts and this, is recognized as sorrow by the mind. Each person's beliefs are according to his/her understanding and knowledge. As an example some people feel happy when they find some money on the road and keep it as their own whereas some other people get concerned on finding that money and consider it their duty to bring that money to its real owner. They remain worried till the owner is found and only then they get joy and satisfaction.

Life is more complicated than we think it is. While we are occupied with the borrowed desire, we inadvertently start competing with 'other-people' for its fulfillment. If we wanted to be only happy by fulfilling our desire then it would have been easy but we want to be happier than other people because we think that other people are happier than us. It is always difficult to be happier than others and we are not able to feel that happiness, even if the desire is basically fulfilled.

It is absolutely essential for us to know what is necessary for us and what is not. Unfortunately it is not as simple as it seems. We should not follow the wishes of others because we do not know exactly what makes the 'other-people' happy and what the reasons for their happiness are. Are they really happy or they pretend to be so. All those things which make other-people happy does not necessarily make us happy too.

No university can give us the knowledge to understand what is necessary for us and what is not. The requirements of each person are different and the importance of each requirement for every individual is also different. Every person will have to evaluate his/her needs and their importance for him/herself. In order to identify our needs, **adhyātm** (self-analysis) is necessary to assess them correctly. **Practical and cultural education** will help us in this self-analysis. Our **character** impacts our thoughts and will also play a big role in this correct assessment. (***They are all part of universal education***)

www.humnaabhooleen.com

अध्यात्म (आत्म-चिंतन) अनिवार्य है। इस आत्म-चिंतन में **व्यवहारिक व सांस्कृतिक-शिक्षा** आपको सहयोग देंगी। आपके **चरित्र**, जो आपके विचारों को प्रभावित करता है, कि भी इस सही आंकलन में बड़ी भूमिका रहेगी। (***ये सभी सार्वभौमिक शिक्षा के अंग हैं***)

शब्दकोष मे 'अध्यात्म' का अर्थ 'आत्मज्ञान' है। आत्मज्ञान से तात्पर्य 'आत्मा का ज्ञान' नही अपितु अपना ज्ञान, अपना अनुभव, अपना विश्लेषण, अपना विवेचन, आपका विचार पूर्वक निर्णय करना है। जब हम 'आत्म-निर्भरता' की बात करते है तो हम स्वयं सक्षम होने की बात कहते है। 'आत्म-विश्वास' अपने उपर विश्वास है। 'आत्मकेंद्रित' का अर्थ 'लालची', 'अपने लाभ की सोचने वाला' है। 'आत्म' शब्द के प्रयोग होने पर भी इसका आत्मा से कोई संबंध नही है।

इस अनुसरण की इच्छा के विषय में श्रीमद्भगवत गीता के ३. अध्याय के २१.वे श्लोक में श्री कृष्ण कहते हैं:

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः |
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते || गीता, ३. २१ ||

अर्थ: *श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है सामान्य पुरुष भी वैसा ही आचरण करने लगते हैं। श्रेष्ठ पुरुष जिस कर्म को करता है, उसी को आदर्श मान कर लोग उसका अनुसरण करते हैं।*

यह अनुसरण का भाव तो मनुष्य की प्रकृति में ही है अन्यथा छोटे बच्चों में यह अनुसरण की इच्छा जिसका उदहारण पहले दिया गया है, हमें देखने को नहीं मिलती। गीता का निम्न श्लोक हमें यह बता भी रहा है:

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् |
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः || गीता, ३. ५ ||

अर्थ: *कोई भी मनुष्य क्षण भर भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता।* ***सभी प्राणी प्रकृति के अधीन हैं और प्रकृति अपने अनुसार हर प्राणी से कर्म करवाती है*** *और उसके परिणाम भी देती है।*

आवश्यकताओं व उनकी महत्तवताओं का आंकलन व्यक्ति अपनी बुद्धि, अपने विवेक द्वारा ही कर पाएगा। बुद्धि के लिए भी गीता हमें बताती है:

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः |
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता || गीता, २. ६१||

अर्थ: *मनुष्य को चाहिए कि वह सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करे क्योंकि जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर हो जाती है।*

ये ज्ञानेन्द्रियाँ (जीभ, त्वचा, आँख, नाक व कान) ही मनुष्य को सांसारिक सुखों का भोग कराती हैं व मन निरंतर सुख-प्राप्ति हेतु इन भोगों की पूर्ति के लिए इच्छाएँ उत्पन्न करता रहता हैं। बुद्धि अपने ज्ञान व विवेकानुसार इस इच्छापूर्ति के लिए कर्मेन्द्रियों (हाथ, पैर, मुंह, गुदा और लिंग, जिसे जननेन्द्रिय भी कहा जाता है) से कर्म करवाती है। यदि बुद्धि स्थिर होगी, विवेक जागृत होगा तभी बुद्धि सही आंकलन कर पाऐगी और तब व्यक्ति उन इच्छाओं, उन लक्ष्य की पूर्ति के लिए कर्म करेगा जो उसे उन्नति की ओर ले जाऐंगे।

हम न भूलें कि

- इच्छा आपको कर्म के लिए प्रेरित करती है। आपका कर्म भोग-प्राप्ति के लिए हो अथवा लक्ष्य-प्राप्ति के लिए, इसका निर्णय आपको ही करना हैं।
- भोग-प्राप्ति ही सुख की प्राप्ति नहीं है। भोग प्राप्त होते ही उसके खो जाने, नष्ट हो जाने अथवा समाप्त हो जाने का भय बना रहता है जो भोग का पूरा आनन्द नहीं लेने देता।
- भोग-प्राप्ति के लिए इच्छाओं का अंत नहीं है। यदि बुद्धि, भोग-पूर्ति की आवश्यकता का आंकलन करने के स्थान पर भोग-पूर्ति किस प्रकार हो इसको प्राथमिकता देगी, तो व्यक्ति अवश्य ही भोगों का दास बन जाएगा और संभव है की भोग-प्राप्ति के लिए अनुचित कार्य भी कर दे।
- किसी उद्देश्य से, सोच-विचार के उपरान्त, किसी लक्ष्य के लिए की गई इच्छा, पूरी हो जाने के पश्चात् दीर्घ-काल तक सुख व आनन्द देती है।
- आप अपने जीवन के स्वयं निर्धारक है। अपने जीवन की सफलता के लिए अपने लक्ष्य, अपने आदर्श निर्धारित कीजिए और यदि इन आदर्शों, इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु दूसरों का अनुकरण करना पड़े, तभी करें अन्यथा नहीं।
- आपका व्यक्तित्व अनावश्यक अनुकरण से कभी भी विकसित नहीं हो सकता, कभी भी उज्जवल नहीं हो सकता।

In the dictionary, 'adhyātm' means 'self-knowledge'. Self-knowledge does not mean 'knowledge of the soul', but your knowledge, your experience, your analysis, your thought, your thoughtful decision making. When we talk of 'self-reliance', we speak of being competent. 'Self-confidence' is faith in yourself. The meaning of 'self-centric' is 'greedy', 'one who thinks only about his interests'. Even if the word 'ātm' is used, it has no relation with the soul.

In regard to this desire to follow, Shri Krishn says in the verse 21 of the chapter 3 of the Srimad Bhagavad Gita:

yadydācharati śreṣṭhstattadevetaro janaḥ,
sa yatpramāṇaṁ kurute lokstadanuvartate || Gita, 3. 21 ||

Meaning: *Normal men start behaving in the same way as ideal men. Whatever the ideal person does, people consider his deeds as best, as ideal and start following him.*

This sense of following is in the very nature of human beings, otherwise how would this desire to follow, appear among young children. The following verse of Gita is also telling us:

na hi kaśchitkśhanmapi jātu tiśhthtykarmkrit
kāryte hyavśh karm sarvh prakritijairgunaih || Gita, 3. 5 ||

Meaning: *No human being can live without actions even for a moment.* ***All living beings are subject to their nature and the nature makes every creature perform actions*** *and accordingly also gives results.*

Needs and their importance will be assessed by a person using his/her own intelligence and wisdom. According to About intelligence, the Gita says:

tāni sarvāṇi sanyamy yukt āsīt matparaḥ
vaśhe hi yasyendriyāṇi tasy pragyā pratiṣhṭhitā || Gita, 2. 61 ||

Meaning: *A person should control all his senses because the intellect of the person who is in the control of the senses, becomes stable.*

The senses of (tongue, skin, eyes, nose and ears) make a person enjoy worldly pleasures and the mind continues to generate desires for the fulfillment of these pleasures. The brain performs **karm** through **karmendriy** (hands, feet, mouth, anus and genitals) to fulfill the desire according to the person's intelligence and wisdom. Only if the intellect is stable, the conscience is awakened, the person will be able to make correct assessment. It will be only then that the person will take actions to fulfill those desires, achieve those goals which will lead him to progress.

Let us not forget that

- Desire motivates you for karm. Whether your karm is to get pleasure or to achieve goal, is for you to decide.
- To get enjoyment or pleasure is not gaining happiness. Every pleasure is accompanied with its fear of getting lost, destroyed or coming to an end. This fear does not allow one to enjoy it fully.
- Desires for pleasures are endless. If the intellect, instead of assessing the necessity for fulfillment would, concentrate on how to fulfill the desires, then the person will definitely become the slave of desires and it is quite possible that he/she may indulge in unfair means to fulfill them.
- A desire to serve a purpose after thorough thinking when achieved, gives happiness and joy for a long time.
- You are the driver of your life. For the success of your life set your own goals and ideals. If you have to follow someone to achieve these ideals and goals, only then do so, else not.
- You can never develop a bright personality through unnecessary imitation.

२४. ०७. २०२१ 24.07.2021